International Research Journal of Humanities, Language and Literature ISSN: (2394-1642)
Impact Factor 5.401 Volume 4, Issue 10, October 2017
Website-www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

निष्काम कर्म का महत्त्व

डॉ. पूनम शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग
आर. एन. कॉलेज, हाजीपुर
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय

सम्पूर्ण विश्व के सभी प्राणी कर्म के नियमों से बँधे हैं। क्षणभर भी कोई प्राणी कर्म के बिना नहीं रह सकता। इस लिए गीता में कहा गया है-

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।

मानव जीवन के लिए इसका विशेष महत्त्व है तथा उसके साथ जीवन की सार्थकता जुड़ी है। कर्म करना तो मानव का स्वभाव है। किन्तु वह अपना कर्म किस रूप में कर रहा है यही उसके जीवन को सार्थक बनाता है। कर्म के साथ उसका फल जुड़ा रहता है, जिससे मनुष्य की आशाएँ बँधी होती हैं। मनोनुकूल कर्मफल की चाह मात्र से व्यक्ति बन्धनग्रस्त हो जाता है तथा कर्म का फल प्रतिकूल मिलने पर दुःखी रहता है। इन सभी प्रकार के दुःखों एवं बन्धनों का मूल कारण है - मानव का कर्म के फल पर टिकी हुई दृष्टि मानव यदि अपनी मूल प्रवृत्ति के अनुरूप कर्म करे अर्थात् सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण की प्रबलता के अनुरूप समुचित कर्म का चयन करे, कर्म के स्वरूप एवं कर्म का फल के साथ जुड़े हुए सम्बन्धों को यदि वह सही रूप में समझ जाये, तो उसकी समस्या कुछ हद तक दूर हो सकती है। कर्म के द्वारा फल की प्राप्ति में अनेक कारक जुड़े होते हैं, जिनका उल्लेख भगवद्गीता के प्रस्तुत श्लोक में किया गया है-

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ।। **(18/14)**

इस श्लोक में कर्म-फल के मूल स्रोतों का उल्लेख किया गया है। किसी कर्म को फल तक पहुँचाने में पाँच कारकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ये हैं -

(1) अधिष्ठान **(Seat of all action) -** यह कर्म के मूल स्थान का सूचक है। जिस शरीर में रहते हुए समस्त क्रियाएँ होती हैं, उस शरीर को उसकी कर्मेन्द्रियों (हाथ, पैर, मुँह आदि) के साथ अधिष्ठान कहा जाता है। किसी कार्य को करने का यही मूल आधार है। इसलिए लोग कहते हैं कि इस शरीर से जो कुछ हो रहा है, मेरे लिए पर्याप्त है। शरीर की शक्ति से अधिक में कुछ नहीं कर सकता है। यह अलग बात है कि दार्शनिक दृष्टि से शरीर एक साधन मात्र है जिसमें कर्मेन्द्रियाँ सर्वाधिक सक्रिय रहती हैं।

(2) कर्त्ता **(Agent) -** कर्म करने वाले को गीता में कर्त्ता कहा गया है। विभिन्न - विचारकों ने कर्त्ता के स्वरूप के विषय में अलग-अलग मत प्रस्तुत किये हैं। आचार्य शंकर के मत में अविद्यायुक्त जीव (जीवात्मा) स्वयं को कर्त्ता समझता है। वह मन और शरीर से जुड़कर कर्म-व्यवस्था **(System of action)** में बंध जाता है तथा कर्म-फूल को पाने का अधिकार भी रखता है । रामानुजाचार्य के मत में व्यक्तिगत आत्मा (जीवात्मा) कर्त्ता है।

श्रीकृष्ण ने गीता में कर्मफल के पाँच कारकों में एक कारक कर्त्ता को बतलाया है। इसकी विवेचना उन्होंने अत्यन्त प्राचीन दर्शन 'सांख्य- सिद्धान्त' के आधार पर की है। सांख्य में 'पुरुष' एवं 'प्रकृति' इन दोनों को मूल तत्त्व माना गया है। पुरुष वस्तुत: अकर्त्ता है, साक्षी है, किन्तु उसकी उपस्थिति मात्र से प्रकृति की क्रिया प्रारम्भ होती है। इसलिए प्रकृति ही कर्त्ता है। जीव (पुरुष) प्रकृति के संपर्क से ही कर्त्ता कहलाता है।

(3) साधन **(Means) -** कर्म करने के लिए प्रयुक्त साधन या उपकरण इसके - अन्तर्गत अति हैं। इस शरीर की कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पैर आदि) साधन के रूप में प्रयुक्त होती हैं। इसके द्वारा सकारात्मक एवं विध्वंसक दोनों प्रकार के कार्य हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, हमारे हाथ किसी की सेवा या सहायता में भी लग सकते हैं। दूसरी ओर, इसका प्रयोग मारने या हत्या करने के लिए भी किया जा सकता है। यह सब मन को मूल प्रवृत्ति एवं संकल्प पर निर्भर करता है। इसी

प्रकार बाह्य साधन के रूप में विविध उपकरण आते हैं। जैसे- सब्जी काटने के लिए चाकू, कोल ठोकने के लिए हथौड़ा, लिखने के लिए कलम, सिलने के लिए सूई आदि ।

(4) चेष्टा **(Efforts)-** मानवीय प्रयत्न को चेष्टा कहा गया है। शरीर की भीतरी क्रियाएँ एवं बाहरी फल प्राप्ति की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की होती हैं। वैज्ञानिक विकास के साथ इन चेष्टाओं का स्वरूप बदलता रहा है। जैसे-प्राचीन काल में मनुष्य पैदल चलता था, आज उसके लिए विभिन्न प्रकार के वाहन बने हुए हैं, तदनुरूप ही चेष्टा भी की जाती है।

(5) दैव **(Destiny)-** यह मानवीय क्रियाओं का ऐसा तत्त्व है जिसकी व्याख्या सांसारिक स्तर पर नहीं की जा सकती। इसे संयोग, भाग्य या पूर्व जन्मों की संचित शक्ति कहा गया है। ऐसा कहा गया है- पूर्वजन्मार्जितं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते ।

गीता में इसे ही 'दैव' कहा गया है। कर्म करने में उपर्युक्त चारों कारकों के अनुकूल रहने पर भी यदि फल प्रतिकूल मिले, तो इसका अर्थ है कि फल को निर्धारित करने में इस पाँचवें कारक की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। स्वामी विवेकानन्द ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा है कि कभी-कभी किसी कर्म की फल-प्राप्ति में अप्रत्याशित परिणाम निकलते हैं। इसका आधार 'दैव' ही है।

'दैव' को स्वीकार करने का यह अर्थ नहीं है कि गीता निष्क्रियता या भाग्यवाद का समर्थन करती है। यह एक सार्वजनीन आवश्यकता है जिसे लक्ष्यरहित होकर अनगिनत उद्देश्यों के लिए व्यक्ति के अन्दर कार्य करती है।

इस प्रकार गीता में यह स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य अपने मन, वचन एवं कर्म द्वारा जो कुछ भी कर रहा है उसमें ये पाँचों कारक सम्मिलित हैं। उसके उचित एवं अनुचित सभी कर्मों के ये मूलाधार हैं। इन कारकों की उपेक्षा कर यदि व्यक्ति (जीवात्मा) स्वयं को कर्त्ता समझे, तो उसकी बुद्धि तत्व के मूल स्वरूप को समझने में असमर्थ है। इसलिए जिस व्यक्ति की बुद्धि स्वयं को अकर्त्ता (साक्षी) तथा कर्मों को प्रकृति का कार्य समझती है, वह बन्धनग्रस्त नहीं होती ।

गीता में कर्म के आन्तरिक स्वरूप तथा फल के साथ इसके सम्बन्ध की वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। यदि मनुष्य इस गम्भीर विषय का चिन्तन करें, तो यह स्पष्ट है कि बिना प्रयत्न के कोई कर्म नहीं होता। साथ ही, अपनी पूरी क्षमता लगाकर यदि कोई व्यक्ति ऐसा अनुमान करे कि परिणाम उसकी इच्छा के अनुकूल होगा, तो यह भी उसका भ्रम है। ऐसी विकट परिस्थिति में उसके पास एक ही विकल्प शेष रह जाता है कि वह कर्म के परिणाम से किसी प्रकार अपने मन को न जुड़ने दें। मन की सम्पूर्ण शक्ति फल पर ही केन्द्रित करने से दुःख-ही-दुःख प्राप्त होता है। इसलिए मनुष्य कर्म को अपना स्वभाव, कर्त्तव्य अथवा दिनचर्या मान कर करे, तो इससे मन कर्म-फल से नहीं जुड़ेगा।

किसी व्यक्ति के लिए स्वधर्म का पालन करना 'कर्म' है और उसमें जब चित्त (मन) जुड़ जाता है, तब वह 'विकर्म' हो जाता है। कर्म के साथ विकर्म के जुड़ने पर निष्कामता की ज्योति व्यक्ति के अन्दर आने लगती है। इससे, शक्ति- स्फोट होता है। विकर्म के कारण, मन की शुद्धि से कर्म का कर्मत्व उड़ जाता है। ऐसे कर्म में जो सामर्थ्य उत्पन्न होता है, वह अवर्णनीय है। उदाहरण के लिए, मुटठी भर बारूद जेब में पड़ी रहती है, किन्तु जब उसमें चिनगारी गिरती है, तो शरीर के चिथड़े उड़ जाते हैं। इसी प्रकार निष्काम कर्म की अनन्त शक्ति गुप्त रहती है। इसके स्फोट से काम, क्रोध, अहंकार आदि भस्म हो जाते हैं।

प्रकृति के अनेक दृश्य मनुष्य को निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। सूर्य का प्रकाश, नदी का प्रवाह, वृक्षों का फलना-फूलना - ये सब निष्काम कर्म के प्रवर्तक हैं। सूर्य का प्रकाश दान जैसा स्वाभाविक है, वैसे ही सन्तों या महापुरुषों का सत्यवादी होना, लोक-कल्याण का कार्य करना सहज एवं स्वाभाविक है। ऐसे निष्काम कर्म अन्य को कार्य करने की प्रेरणा देते हैं। सूर्य का प्रकाश यदि संसार में प्राणियों को न मिले, तो जीवन असम्भव हो जायेगा। निष्काम कर्म के इस महत्व को समझते हुए व्यक्ति को सकाम कर्म से ऊपर उठना चाहिए। अपनी प्रकृति के अनुरूप स्वधर्म के चयन से ही यह रूपान्तरण सम्भव हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

01. भगवद् गीताप्रेस, गोरखपुर

02. गीता-प्रवचन - वनोबा

03. भगवद्गीता (हिन्दी अनुवाद) - डॉ. राधाकृष्णन्